THE ECONOMIC TIMES

Date:07-03-20

Time to diversify EPF asset classes

ET Editorial

The 8.5% return recommended by the Employees' Provident Fund Organisation (EPFO) for 2019-20, following a decline in its income, might upset workers — this is 15 basis points lower than in 2018-19. However, the return on EPF is markedly higher than the interest rates on offer in bank deposits, other small savings schemes and the 10-year yield on government securities in which the EPF invests most of its corpus.

Since investments in government bonds are held to maturity, the weighted average rate of the return on retirement savings is higher than the 10-year yield on g-secs (that is sub-7% now). Yields on government bonds have been impacted as RBI has cut rates by 135 basis points to let the economy grow. The expectation is that bond yields would come down over the next year, and lower returns, to some extent, for subscribers. Reportedly, the EPF would have seen a deficit had the return been retained at 8.65%. The interest income of the EPFO for this fiscal has been pegged at Rs 58,500 crore, in addition to a notional income of Rs 2,500 crore from investments in exchange-traded funds. The rate of return on EPF hinges on how efficiently the corpus is invested, underscoring the need for the EPF to invest in diverse asset classes rather than bonds embellished with equities.

Right now, the EPF invests 85% in debt and 15% in equities. It needs to establish claims on broader chunks of the economy's productive capacity, by expanding its asset classes. Private equity, special situation funds for opportunities such as insolvency resolution assets going cheap, real estate — these must be considered. To diversify risk, a portion of the corpus could be invested abroad as well. Recruit fund management talent, pay them as Canadian pension funds do, incentivising long-term performance.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:07-03-20

रेल सेवाओं का निजीकरण

टी. एन. नाइनन

रेल सेवाओं के निजीकरण का मसला सैद्घांतिक नहीं बल्कि व्यावहारिक है। इसके जरिये ही इस कवायद को सफल बनाया जा सकता है। कई देश अपनी रेल सेवाओं का आंशिक निजीकरण कर चुके हैं। ब्रिटेन, जापान, कनाडा, स्वीडन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि ऐसे ही कुछ देश हैं। मिस्र ने भी यह प्रक्रिया शुरू कर दी है जबकि अर्जेन्टीना ने रेल पटरियां तक निजी ढंग से बिछाने का काम शुरू किया है। इनमें से कई देशों ने एक सदी पहले निजी रेल से ही शुरुआत की थी। बाद में जब रेल कंपनियां संकट से जूझने लगीं तो उनका राष्ट्रीयकरण किया गया। अब एक बार फिर इस क्षेत्र में सरकारी स्वामित्व कम किया जा रहा है। भारत में भी 19वीं सदी के मध्य में रेलवे की शुरुआत निजी रेल कंपनियों से ही हुई थी। सन 1951 में उनका निजीकरण किया गया और अब पहली बार वापस निजीकरण का कदम उठाया जा रहा है। भोपाल स्थित हबीबगंज स्टेशन देश का पहला निजी रेलवे स्टेशन है और जल्दी ही 50 अन्य स्टेशन इस श्रेणी में शामिल हो जाएंगे।

शुरुआती योजना 400 स्टेशनों का निजीकरण करने की थी। दो निजी तेजस ट्रेनों की संख्या बढ़ाकर 150 की जानी है। यह कोई मुश्किल काम नहीं है क्योंकि देश में रोज 7,000 यात्री ट्रेन चलती हैं। तेजस केवल नाम के लिए निजी ट्रेन है क्योंकि उनका परिचालन सरकारी कंपनी करती है। इसके अलावा परिवहन के अन्य तरीकों में निजी क्षेत्र का दबदबा आम है। बंदरगाह और नौवहन, विमानतल और विमानन कंपनियां तथा यात्री बस और ट्रक सेवाएं इसका उदाहरण हैं। केवल रेलवे पर ही सरकार का एकाधिकार रहा। सरकारी या निजी स्वामित्व का मसला वैचारिक नहीं है बल्कि रेल परिचालन का निजीकरण अन्य तरह के परिवहन के निजीकरण से कहीं अधिक जटिल है। निश्चित तौर पर निजी रेल का इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है। 19वीं सदी के मध्य में भारतीय रेल का निर्माण और संचालन निजी कंपनियों द्वारा किया जाता था। वे ऐसा उस पूंजी से करती थीं जिस पर 5 फीसदी रिटर्न की गारंटी होती थी। दूसरी तरह देखें तो भारतीय करदाता ब्रिटेन को हर वर्ष अपने जीडीपी का 4 फीसदी तक कर देते थे जिसमें ज्यादातर हिस्सा रेलवे से था। परंतु 20वीं सदी के बाद के दिनों में जब शुरुआती निजी बिजली उत्पादन कंपनियों को गारंटीड रिटर्न की पेशकश की गई तो उस विवादित इतिहास को भुला दिया गया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तराद्घ में अमेरिका में जब पहली बार तट से तट तक रेल लाइन बिछाई गई तब उसके लिए जिस मुफ्त जमीन की पेशकश की गई थी उसका आकार बहुत बड़ा था। ब्रिटिश रेल का निजीकरण तो समकालीन उदाहरण है। मार्ग्रेट थैचर द्वारा किया गया यह निजीकरण भी विवादों में रहा लेकिन जापान साझा रेल नेटवर्क पर आधा दर्जन से अधिक निजी रेलवे सिस्टम चलाता है। भारत ने कुछ वर्ष पहले निजी कंटेनर फ्रेट परिचालन की शुरुआत की थी लेकिन उसे ज्यादा कामयाबी नहीं मिल सकी। सन 1990 के दशक में रेलवे वर्कशॉप के निजीकरण का प्रस्ताव आया लेकिन ज्यादा नहीं टिका। इसके जोखिम और दिक्कतें एकदम स्पष्ट हैं। नई निजी ट्रेनों के साथ प्रतिस्पर्धा में रेल संचालन हितों के टकराव की वजह बनेगा और विवाद उत्पन्न होंगे। परंतु इन्हें हल करने के लिए कोई नियामकीय व्यवस्था प्रस्तावित नहीं है।

निजी ट्रेनों के संभावित परिचालन वाले कई मार्गों पर पटरियों की क्षमता कमतर है। रेलवे माल वहन से होने वाली आय से यात्रियों को क्रॉस सब्सिडी देता है, ऐसे में व्यवहार्यता का प्रश्न भी उठेगा। खासकर ऐसे में जबकि हवाई किराया काफी कम रहता है। इन सबसे बढ़कर मौजूदा रेलवे और नया निजी ट्रेन परिचालन तभी सहजता से काम कर सकेगा जब वह सेवाओं के लिए उपयुक्त किराया वसूल करे। विमानतल के मामले में कुछ विमानन कंपनियों की शिकायत रही है कि उनसे हवाई अड्डे पर बहुत अधिक शुल्क वसूल किया जाता है। उनका कहना है कि ये हवाई अड्डे दुनिया में सर्वाधिक शुल्क वाले हैं।

इस क्षेत्र में नियामक का सुझाव देने में संकोच किया जाता है क्योंकि दूरसंचार, विमानन आदि क्षेत्रों में नियामक का अनुभव संतोषजनक नहीं रहा। परंतु कोई विकल्प नहीं है। इन अनसुलझे मसलों और जटिलताओं को देखते हुए अच्छा है कि सरकार धीमी गति से आगे बढ़ रही है। 50 स्टेशनों और 150 ट्रेनों का अनुभव सबक की तरह होगा। इससे ऐसे नियम बनाने में सुविधा होगी जो निजी परिचालकों के खिलाफ भी न हों, जिन पर कोई आरोप भी नहीं लगे, सरकारी अंकेक्षक जिसकी आलोचना न करें और जो अदालती लड़ाइयों में न उलझे। नई ट्रेन तेज होनी चाहिए लेकिन निजीकरण की योजना धीमे और सुविचारित अंदाज में सामने रखी जानी चाहिए।

दैनिक भास्कर

Date:07-03-20

विज्ञान की दुनिया में महिलाओं को कम अहमियत क्यों?

संपादकीय

विज्ञान प्रौद्योगिकी और महिला बाल विकास मंत्रालय ने 20 वीं सदी की 11 भारतीय महिला वैज्ञानिकों को चुना है, जिनके नाम पर देश के मशहूर संस्थानों में चेयर होंगी। यहां महिलाओं को शोध करने के लिए 1 करोड़ रुपए तक दिए जाएंगे। इसी महीने विज्ञान दिवस को हुई इस घोषणा का महिला दिवस पर जश्न मनाया जाना चाहिए। वक्त है मंगलयान और चंद्रयान प्रोजेक्ट्स में महिला वैज्ञानिकों के योगदान को याद करने का। इस सबके बावजूद अफसोस यह कि दुनिया में महिला रिसर्चर सिर्फ 30% हैं। साइंस, टेक्नोलॉजी, इंजीनियरिंग और मैथेमेटिक्स(एसटीईएम-स्टेम) में करिअर बनाने में महिलाएं क्यों पीछे हैं? एक स्टडी कहती है स्टेम में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा आधे से भी कम रिसर्च पब्लिश करने का मौका मिलता है। यही नहीं उन्हें रिसर्च के लिए पुरुषों के मुकाबले कम पैसे भी दिए जाते हैं। पारिवारिक जिम्मेदारियां और वर्कप्लेस पर कम अहमियत दिए जाने जैसी कुछ वजहें हैं जिनके चलते भारत में रिसर्च फील्ड में महिलाओं की संख्या बमुश्किल 15% ही है। यूनेस्को के इसी से जुड़े आंकड़े चौंकाने वाले हैं। बोलीविया में महिला रिसर्चर की संख्या 63% है, जबकि फ्रांस में 26%। स्टडी कहती है कि साइंस की पढ़ाई करने के बाद ज्यादातर महिलाएं रिसर्च की दुनिया में सरकारी नौकरी करती हैं और पुरुष प्राइवेट और कॉर्पोरेट सेक्टर में। बात साफ है कि उनके हाथ कम सैलरी वाली सरकारी नौकरी आती है। हैरानी और अफसोस तो इस बात पर होता है कि मेडिकल साइंस की दुनिया में मानव शरीर, दिल और दिमाग पर हो रही तमाम रिसर्च में से 95% पुरुषों को उदाहरण मानकर हो रही हैं।

यहां तक कि दवाइयों का असर जानने के लिए जिन जानवरों का इस्तेमाल किया जाता है वह भी फीमेल नहीं होते। शोध करने वालों को फर्क नहीं पढ़ता कि दवाई का महिलाओं पर या फीमेल टिशू आखिर क्या असर होगा। खैर मनाइए कि अमेरिका के नेशनल हेल्थ इंस्टीट्यट ने कुछ साल पहले ही इस लैंगिक भेदभाव को खत्म करने का फैसला लिया है और ऐलान किया है कि उनके रिसर्च में अब फीमेल टिशू, सेल और जानवर भी शामिल होंगे। सवाल बस यही है कि लड़कों से ज्यादा डिग्री लेने वाली, मैरिट में बेहतर जगह हासिल करने वाली मेहनतकश और होशियार लड़कियों के हिस्से विज्ञान की दुनिया में इतनी थोड़ी अहमियत क्यों आती है ?

Date:07-03-20

अपरंपरागत चुनौतियां महिलाओं के लिए अवसर

भविष्य है औरतों की बराबरी का न कि हिस्से का, सशक्तिकरण का न कि सुधार का

साधना शंकर

कुछ महीने पहले फिनलैंड में चार पार्टियों की एक साझा सरकार की ताजपोशी हुई है। इतिहास की शायद यह ऐसी पहली साझा सरकार है जिसमें चारों दल की प्रमुख महिलाएं हैं और सना मरीन प्रधानमंत्री हैं। एक युवा स्कूली बच्ची ग्रेटा थनबर्ग दुनियाभर में पर्यावरण बचाने के लिए आंदोलन कर रही है और उसे टाइम ने पर्सन ऑफ द ईयर 2019 घोषित किया है। भारत की सर्वोच्च अदालत ने सेना में महिलाओं को परमानेंट कमीशन और कमांड पोस्ट देने के फैसले के साथ जेंडर बराबरी को मजबूती दी है। इंटरनेशनल वुमन्स डे 8 मार्च 2020 को लीडरशिप रोल्स में महिलाओं की प्रगति का जश्न तो मनाया जाना चाहिए, साथ-साथ वक्त है चिंतन का।

फिलहाल दुनिया के लगभग 22 देशों की प्रमुख महिलाएं हैं। दुनिया में लीडरशिप पोजीशन पर बोलीविया से न्यूजीलैंड, नामीबिया से नॉर्वे और जर्मनी से ग्रीस तक महिलाएं हैं। तकरीबन 12 प्रतिशत दुनिया पर महिलाओं का शासन है और यह प्रतिशत बस बढ़ता जाएगा। भविष्य में हमारे समाज की संरचना और हमारी धरती एक अलग नेतृत्व की मांग करेगी। आज जिन चुनौतियों का सामना लोग और राष्ट्र कर रहे हैं वह उससे बेहद अलग है जब पुरुषों के नेतृत्व में मानवजाति के विकास की गति पंक्तिरूप में चल रही थी।

जलवायु परिवर्तन नि:संदेह ही सबसे ज्यादा भयानक और व्यापक है। डेटा पर हमला और उसकी अहमियत, बिजनेस और कॉमर्स में तकनीक के जरिए व्यवधान और पहचान में बदलाव कुछ ऐसी लड़ाई हैं जिनके बारे में पहले कोई नहीं जानता था। इन नए वक्त की चुनौतियों को मिल रही प्रतिक्रिया भी पारंपरिक है। आक्रामकता की सदियों पुरानी तकनीक, 'हम और वे" का प्रतिमान बनाने की या फिर दिक्कतों से इंकार करने की, या फिर लंबी खिंची चली आ रही बातचीत, कानून का रामबाण सरीखा पास होना, कहना कुछ और करना उससे अलग, ऐसी कुछ पारंपरिक प्रतिक्रियाएं देखने को मिल रही हैं।

अब जब विकास की परिभाषा बदल रही है तो ये अपरंपरागत चुनौतियां महिला लीडर्स के लिए अवसर हैं इन मसलों को अलग नजरिए से उठाने का, ऐसा मॉडल लाने का जो दुनिया के व्यावहारिक और विस्तारित दृष्टिकोण से वास्ता रखता हो। जो करुणा से प्रेरित हो न कि आक्रामकता से। महिलाओं को पुरुषों से बेहतर होने की जरूरत नहीं। उन्हें लीडरशिप पोजीशन में अलग और बेहतर विकल्प चुनने होंगे। वह विकल्प जो वक्त के साथ प्रतिध्वनित होते हैं और संकल्प का अलग प्रतिमान दें। आतंक पर न्यूजीलैंड की प्रतिक्रिया, मॉस्को में क्रोएशिया की राष्ट्रपति का 2018 फीफा फुटबॉल वर्ल्डकप टीम को दिलासा देना और आइसलैंड का महिला और पुरुषों को बराबर वेतन का कानून लागू करना इसी दिशा में बढ़ने के कुछ उदाहरण हैं।

खेती का प्रारंभ, औद्योगिक युग या फिर सूचना युग, सभी के अग्रज पुरुष रहे हैं। जो अब बदलाव की ओर है। अब ज्यादा से ज्यादा महिलाएं आने वाली सदी में उद्योग कैसे हों ये गढ़ने में लगी हैं। उनके नए मोर्चे में खेती से लेकर स्पेस तक शामिल है। महिलाएं नेतृत्व के पदों के लिए धीरे-धीरे अपना रास्ता बना रही हैं। फॉर्चून 500 कंपनियों की लिस्ट में शामिल 33 कंपनियों की सीईओ महिलाएं हैं, जिनमें से शेरिल सैंडबर्ग फेसबुक की सीओओ हैं, उर्सुला बर्न्स वेओन की चेयरपर्सन हैं, फेबे नोवाकोविक डिफेंस कंपनी अमेरिकन डायनमिक्स की प्रमुख हैं। ये सभी कल की उम्मीदों पर नजर रखने के साथ ही वर्तमान की जरूरतों और व्यवधानों के आधार पर विकास की रणनीति बना रही हैं। कार्यस्थल की बात करें तो वहां भी बदलाव असाधारण हैं। आईएलओ के मुताबिक दुनियाभर में फीमेल लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट (एफएलएफपीआर) लगभग 49 प्रतिशत है। जैसे-जैसे महिलाएं नौकरी की सीढ़ी चढ़ रही हैं, कार्यस्थल पर महिलाओं का एकजुट होना जरूरी है। ठीक उसी तरह जैसे दफ्तरों में पुरुष गुटबाजी करते हैं, महिलाओं का साथ होना ही उनकी मदद करेगा, उन्हें मेंटर करेगा और लड़कियों-महिलाओं को प्रोत्साहित भी। आज ऐसे किसी गठबंधन को पोषित करने के लिए किसी ऑर्गेनाइजेशन में सिर्फ एक वॉट्सएप ग्रुप की जरूरत होती है।

कार्यस्थल पर भी जेंडर आइडेंटिटी को अपनाने के मामले बढ़ेंगे जिनसे हम अभी तक अपरिचित हैं। अभी से ही लिंग जांच सर्जरी के लिए छुट्टी और रीइम्बरसमेंट, ट्रांसजेंडर्स के लिए दफ्तर में टॉयलेट और होमोफोबिया से निपटना एचआर के काम का हिस्सा बन गया है।

इसरो ने हाल ही में व्योमित्रा रिलीज की है जो बिना पैरों वाली फीमेल ह्युमोनाइड है और गगनयान प्रोजेक्ट की पहली ट्रेवलर भी। वह या उसकी ही तरह कोई और ह्युमोनाइड मानव मिशन के साथ जाएंगी। तकनीकी एडवांसमेंट के साथ कार्यस्थल सिर्फ मानव का इलाका नहीं रहेगा। संवेदनशीलता और बुद्धिमता के साथ परिपूर्ण रोबोट्स और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस हमारे दफ्तर का अहम हिस्सा होंगे। पुरुष, महिलाओं, अलग-अलग पहचान वाले लोगों, मशीनों, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और माहौल से निपटना महिला मैनेजर के लिए चुनौती होगा।

इंटरनेशनल वुमन्स डे के मौके पर जब हम पितृसत्ता की जंजीरों को तोड़कर आगे बढ़ रहे हैं तो हमें आने वाली दुनिया के लिए तैयार रहना होगा। आगे का रास्ता पुरुषों के खिलाफ नहीं है। जैसे-जैसे हमारा परिदृश्य उभर रहा है हमें मिलनसार, दयालु और समावेशी होना होगा। इसलिए नहीं क्योंकि हम महिला हैं बल्कि इसलिए क्योंकि भविष्य में फायदा सिर्फ चुनिंदा का नहीं होना चाहिए जैसा कि अतीत में होता रहा है।

भविष्य है बराबरी का न कि हिस्से का, सशक्तिकरण का न कि सुधार का और अवसरों का जो अपने विकल्पों से निर्मित हों। हर एक के लिए - महिलाएं, पुरुष और बाकी सभी।

दैनिक जागरण

Date:07-03-20

हर तरह की सांप्रदायिकता होती है खतरनाक

क्षमा शर्मा

पिछले दिनों देश की राजधानी दिल्ली के उत्तर पूर्वी इलाके जिस तरह भीषण सांप्रदायिक हिंसा से जल उठे और तीन दिन में 48 लोगों ने जान गंवा दी वह दिल दहलाने वाला है। जिस धर्म और मंदिर-मस्जिद के नाम पर लोग लड़ रहे थे वे उन्हें बचाने नहीं आए। आखिर यह धर्म की कैसी रक्षा है, जो एक-दूसरे की जान लेने पर आमादा हो जाती है?दंगा प्रभावित इलाकों से जितनी भी खबरें आईं उनमें लगभग एक जैसी बातें कही गईं कि यहां तो कभी ऐसा हुआ ही नहीं... सब एक-दूसरे से प्यार से रहते आए हैं। हिंदू ने मुसलमान और मुसलमान ने हिंदू को बचाया है। देखने की बात यह है कि दशकों का प्यार एकाएक इतनी घृणा में तब्दील कैसे हो गया? घृणा एक दिन में नहीं पनपती है। यह हमारे मन में रहती है और मौका मिलते ही बाहर निकल आती है। भाई-भाई के नारे इस घृणा को छिपाने के लिए ही लगाए जाते हैं। वरना तो जो भाई-भाई हैं उन्हें यह बार-बार कहने, बताने की जरूरत कब पड़ती है कि वे भाई-भाई हैं?सवाल यह भी है कि जब इतना भाईचारा था तो फिर आखिर मारा किसने? जिनसे भी पूछा गया कि दंगाई कौन थे तो लगभग सभी ने एक ही बात कही कि वे दंगाइयों को नहीं पहचानते और दंगाई बाहर से आए थे। अगर यह मान भी लें कि दंगाई बाहर से आए थे तो उन्हें यह कैसे पता चला कि मिली-जुली आबादी में कौन सा घर हिंदू का है और कौन सा मुसलमान का? चुन-चुनकर निशाना कैसे बनाया गया?सच तो यह है कि हिंसा प्रभावित इलाकों में लोग दंगाइयों को पहचानते होंगे, लेकिन वे बताना नहीं चाहते। बता देंगे, दंगाइयों की पहचान उजागर कर देंगे तो पूछने वाले तो अपने-अपने रास्ते जाएंगे। क्या पता दंगाई लौटकर दोबारा आ धमकें। इसके अलावा अगर दंगाइयों का नाम ले दें तो पुलिस के चक्कर में कौन पड़ेगा? कौन कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाएगा? इन साधारण लोगों में से कितनों के पास इतना समय और संसाधन है कि वे सारा काम-धाम छोड़कर कोर्टकचहरी के लिए दौड़ सकें?क्या हमें सांप्रदायिकता की परिभाषा पर फिर से नहीं सोचना चाहिए? अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता बहुसंख्यक सांप्रदायिकता से कम खतरनाक होती है, के मुकाबले इस बात पर जोर क्यों नहीं होना चाहिए कि हर तरह की सांप्रदायिकता खतरनाक होती है। एक की सांप्रदायिकता दूसरे की सांप्रदायिकता को हर हाल में बढ़ाती ही है।इसलिए दूसरे की तरफ अंगुली उठाने से पहले अपनी-अपनी नफरत से लड़ना चाहिए। अपने-अपने दंगाइयों को बचाने के बजाय उन्हें पुलिस के हवाले किया जाना चाहिए। उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाना चाहिए। बुराई और बुरे लोगों का साथ देना भी अपराध को बढ़ावा देना ही है, क्योंकि मरे कोई भी, अंतत: इंसान ही मरता है। इसका सबसे अधिक खामियाजा परिवारों को भुगतना पड़ता है। आखिर इन सबका कसूर क्या था?दरअसल नाम तो कथित धर्म की रक्षा का होता है, लेकिन मारकाट, हिंसा अपनी-अपनी पैशाचिक ताकत दिखाने की होती है। दिल्ली दंगों में जिस तरह आम लोग मारे गए हैं उसका सबक यही है कि ऊपर से भाई-भाई और हम सब एक हैं के नारे लगाने के बजाय हम अपने मन में बैठी नफरत को दूर करें। अफसोस कि राजनीतिक दलों के वोटों का गुणा- भाग समाज में फैली इसी हिंसा, इसी ध्रुवीकरण से तय होता है। वोटों के लिए पहले नफरत के बीज बोए जाते हैं और पलटकर फिर भाई-भाई की बातें की जाती हैं।नेताओं को इस तरह का अभिनय करना, झूठ बोलना बखूबी आता है। क्या लोकतंत्र का अर्थ सिर्फ लड़ाई झगड़ा और मार-काट ही रह गया है? सभी पार्टियां जाति-धर्म को न मानने की कसमें खाती हैं, लेकिन छोटे से

छोटे चुनाव के वक्त उम्मीदवारों का चयन इसी आधार पर करती हैं और हम उन्हीं के उकसावे में आकर एक-दूसरे की जान लेते हैं।पिछले दिनों जिन नेताओं, बुद्धिजीवियों ने लोगों को उकसाया, क्या उनमें से किसी का भी बाल बांका हुआ। क्या किसी का कोई नुकसान हुआ। किसी का नहीं हुआ। मारे गए आम लोग और आम लोगों की ही संपत्ति स्वाहा हुई। लोगों को उकसाने और उन्हें सड़कों पर उतारने वाले तो प्रभावित इलाकों में कहीं नजर भी आए। वैसे भी अगर घटना हो जाए, कोई मुसीबत आ जाए तो उसके गुजरने के बाद अक्सर लोग बुद्धिमान बनते हैं। मुसीबत के समय मदद को आना तो दूर, पता नहीं किन दड़बों में घुस जाते हैं?

टीवी चैनल्स और सोशल मीडिया में इन दिनों जिस तरह नफरत का प्रचार-प्रसार किया जाता है, अक्सर एकपक्षीय बातें की जाती हैं वे बेहद निंदनीय हैं। आखिर यह कहने से किस तरह से सांप्रदायिक सद्भाव हो सकता है कि हम अपने-अपने पक्ष चुन लें। नुकसान अगर दोनों पक्षों का हुआ है तो हमें दोनों पक्षों की बात करनी चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं है। मीडिया से लेकर बुद्धिजीवी तक सिर्फ एक पक्ष की बात करते हैं और उसी में अपनी प्रगतिशीलता समझते हैं। ऐसा महसूस होता है कि 'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना' जैसी पंक्तियों को बदल दिया जाए। बताना चाहिए कि यह मजहब ही है जो एक-दूसरे से नफरत करना सिखाता है। जो अपने से इतर दूसरे को बर्दाश्त करने में अपनी हेठी समझता है।इसीलिए धर्म की स्थापना और श्रेष्ठता के नाम पर दूसरे धर्मावलंबी को नेस्तनाबूद करने की सोचता है और यह भी कि आतंक का किसी धर्म से लेना-देना नहीं है। आखिर दुनिया में धार्मिक पहचान के आधार पर ही तरह-तरह का आतंकवाद फैल रहा है। हम भले ही सियासी रोटियां सेकने के लिए उसे न मानें। हाल में ऐसे तमाम वीडियो सामने आए, जिनमें बदला लेने, सड़क पर देख लेने की बातें की गई हैं। आखिर नफरत का यह कारोबार कब थमेगा और कैसे ?

राष्ट्रीय सहारा

Date:06-03-20

महिला उद्यमियों की चुनौतियां

डॉ. राजीव कुमार , (लेखक नीति आयोग के उपाध्यक्ष हैं।)

साक्ष्यों से पता चलता है कि महिलाओं में कम अभिमान और अत्यधिक विनम्रता का भाव होता है, जो नकारात्मक रूप से एक उद्यमी के रूप में जोखिम लेने वाले व्यवहार और उद्यमिता में बड़े स्तर पर भागीदारी को प्रभावित करता है। दुर्भाग्यवश, केवल कम अभिमान ही एक कारण नहीं है जो भारत में महिलाओं को सफल उद्यमी बनने से रोक रहा है।

भारत में महिलाओं के स्वामित्व वाले 13.5 और 15.7 मिलियन उद्यम हैं। सरकार के हस्तक्षेप, वित्तीय पहुंच में सुधार और शिक्षा तक पहुंच के कारण पिछले दशक में महिलाओं के स्वामित्व वाले उद्यमों में 14% से 20% की वृद्धि हुई है। हालांकि, मास्टर कार्ड की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत का कारोबारी माहौल महिला उद्यमियों के लिए अनुकूल नहीं है। अधिकांश महिलाएं आज भी सहायक कार्य के रूप में व्यावसायिक गतिविधियों को आगे बढ़ा रही हैं क्योंकि घर के अधिकांश कामों को करना जारी रखती हैं। अक्सर बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल करने में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। जिस प्रकार का व्यवसाय महिलाएं करती हैं, उसकी प्रकृति भी पुरु षों की तुलना में अलग है, इसलिए ऋण और समरूपी

ऋण की उनकी आवश्यकता अलग है। हालांकि विश्व बैंक के ग्लोबल फाइंडेक्सि डेटाबेस के अनुसार, महिलाओं की तुलना में अधिक भारतीय पुरु षों ने एक वित्तीय संस्थान से उधार लेने या क्रेडिट कार्ड का उपयोग करने की जानकारी दी है। वित्तीय बाजारों और उत्पादों तक पहुंच से जुड़े अनेक मुद्दों के कारण लिंग अंतर मौजूद है। भले ही महिलाओं के पास समान संपत्ति का अधिकार हैं, लेकिन उन्हें आम तौर पर अपने परिवार से विरासत में संपत्ति नहीं मिलती।

नीति आयोग का डिजिटल प्लेटफार्म महिला उद्यमिता मंच ऐसी पहल है, जो महिला उद्यमियों को जरूरी जानकारी हासिल करने में आने वाली दिक्कतों को दूर करता है। इच्छुक महिला उद्यमी इस पोर्टल पर पंजीकरण कराकर विभिन्न सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकती हैं। साथ ही, अपने व्यवसाय के लिए लेखाकार जैसे सेवा प्रदाताओं से भी सपंर्क कर सकती हैं। डिजिटल वित्तीय साधन महिला उद्यमियों को वित्तीय संस्थाओं तथा पूंजी की उपलब्धता से जुड़ी जानकारियां हासिल करने में मदद कर सकता है। इसके जरिए महिला उद्यमी मोबाइल फोन या इंटरनेट के माध्यम से अपने बैंक खातों से लेन-देने कर सकती हैं। इससे बैंक तक जाने-आने में लगने वाले समय तथा होने वाले यात्रा खर्च की बचत हो सकती है, और यह समय अपने कारोबार को बढ़ाने में लगा सकती हैं। इस तरह की बचत महिला उद्यमियों के लिए काफी फायदे की इसलिए होती है क्योंकि उनका उद्यम ज्यादातर छोटे आकार का होता है, जिसमें बिक्री और मुनाफा, दोनों कम होता है। डिजिटल वित्तीय साधन महिला उद्यमियों के उन परिवारजनों की सुरक्षा चिंताओं का भी समाधान करते हैं, जो नहीं चाहते कि उनकी पत्नियां या बेटियां कारोबारी जरूरतों के लिए अकेले यात्रा करें। इसका एक लाभ यह भी है कि तैयार उत्पादों तथा खरीद प्रक्रिया का डिजिटल लेन-देन के रिकॉर्ड से बेहतर प्रबंधन संभव हो पाता है।

ग्राहक सेवाओं से जुड़े बिलों के नियमित भुगतान और इन्वेंट्री प्रबंधन के लिए खास तौर से तैयार डिजिटल वित्तीय साधन ऐसे नये उद्यमों के लिए कर्ज और उनकी अदायगी को ब्यौरा रखने में काफी मददगार हो सकते हैं, जिनके पास पहले से ऐसा कोई ब्यौरा नहीं होता या फिर जो कर्ज के एवज में किसी तरह की कोई गारंटी नहीं दे सकते। बैंक खातों में अनिवार्य न्यूनतम राशि रखने से छूट, छोटे और मध्यावधि कर्ज के प्रावधान तथा माइक्रो सेविंग आदि कुछ ऐसे वित्तीय उत्पाद हैं, जो डिजिटल साधनों के माध्यम से हासिल किए जा सकते हैं। महिला उद्यमियों के बैंक खातों में सीधे पैसा भेजने की व्यवस्था से महिलाओं को ज्यादा वित्तीय स्वायत्तता हासिल हो सकती है जिससे वे ज्यादा बचत कर सकती हैं। अपने कारोबार में निवेश बढ़ा सकती हैं। नीति आयोग गो डिजिटल प्लेटफार्म महिला उद्यमियों में बहीखाता तैयार करने, आयकर में छूट के लिए लेखाकारों से संपर्क करने, सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने तथा प्रभावी निवेश प्रबंधन जैसे कौशल विकसित करने में भी काफी मददगार हो सकता है। वैसे तो प्रौद्योगिकी में महिला उद्यमियों के कारोबार की दक्षता बढ़ाने की व्यापक क्षमता होती है, लेकिन प्रौद्योगिकी तक उनकी पहुंच अत्यंत सीमित होती है। बिजली तक सीमित पहुंच और सुढ़ एवं सर्वव्यापी डिजिटल नेटवर्क का अभाव भारत में डिजिटल वित्तीय क्रांति के मार्ग में बाधाएं हैं।

इसके अलावा, भारत में पुरु षों की तुलना में अपेक्षाकृत कम महिलाओं के पास मोबाइल हैंड़सेट अथवा इंटरनेट की सुविधा होती है। यही नहीं, महिलाओं द्वारा स्मार्टफोन का उपयोग करने और नये वित्तीय उत्पादों तथा किसी नई प्रौद्योगिकी के साथ प्रयोग करने की कम संभावना रहती है। यह भी पाया गया है कि वैसे तो महिलाएं सोशल मीडिया एप्लीकेशंस से अवगत रहती हैं, लेकिन उन्हें उन विभिन्न वित्तीय साधनों अथवा उत्पादों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं होती जो उनका कारोबार बढ़ाने में मददगार साबित हो सकते हैं। वैसे तो देश में पुरु षों और महिलाओं की शिक्षा में अंतर काफी घट गया है, लेकिन पुरुषों और महिलाओं की वित्तीय साक्षरता में व्यापक अंतर होने से उनका कारोबार काफी प्रभावित हो सकता है। ये चुनौतियां महिलाओं द्वारा डिजिटल ढंग से वित्तीय साधनों अथवा उत्पादों का उपयोग करने व उद्यमी के रूप में उनकी उत्पादकता को काफी सीमित कर देती हैं।

डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग कर वित्तीय साधनों या उत्पादों तक पहुंच बढ़ाना उद्यमिता में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की दृष्टि से प्रभावकारी है। हालांकि यह इस समस्या के समाधान का केवल एक हिस्सा है। ऐसी कई अन्य सामाजिक-आर्थिक चुनौतियां भी हैं, जिनके मोर्चे पर सुधार की जरूरत है। सरकार, निजी क्षेत्र और गैर-लाभकारी संगठनों ने महिलाओं के स्वामित्व वाले कारोबार में मदद के लिए कई योजनाओं एवं पहलों का शुभारंभ किया है।

महिलाओं के स्वामित्व वाली 3 प्रतिशत एमएसएमई फर्मों से अनिवार्य खरीद अथवा महिला उद्यमियों से जुड़े कौशल प्रशिक्षण और प्रमाणन कार्यक्रम इसके कुछ उदाहरण हैं। बच्चो व बुजुर्गों के लिए 'दिन के समय सुरक्षित, किफायती और सुगम्य देखभाल वाली विश्वसनीय व्यवस्था', सामाजिक संरक्षण योजनाओं व घरेलू कामकाज में पुरुषों व महिलाओं की समान भागीदारी ऐसे सामाजिक सुधार हैं, जो महिला उद्यमियों को आने वाले दशक में भारत की विकास गाथा का अहम हिस्सा बनने में मददगार साबित हो सकते हैं।